बच्चे की क्षमता

हृदय कान्त दीवान

भाषा पढ़ाने वाले और प्रारम्भिक कक्षाओं के अध्यापक इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देते कि उनकी कक्षा में जो बच्चे हैं वे पर्याप्त क्षमतावान हैं। एक चार साल का बच्चा भाषा की दृष्टि से इतना वयस्क होता है कि वह अपनी भाषा में वार्तालाप कर सकता है। इसके अन्तर्गत केवल शारीरिक क्रियाकलाप ही नहीं आते, अपितु वह अपने चारों ओर के वातावरण को व्यवस्थित करने एवं उसके साथ व्यवहार करने में भी समर्थ है। यही नहीं अपने दायरे के अन्तर्गत सम्बन्धों और परिवर्तनों का कुशलता पूर्वक उपयोग करने में भी समर्थ है। वह कल्पना कर सकता है, अनुमान लगा सकता है और उसमें गिनती (अंकों) और वस्तु की मात्रा की समझ है। यह क्षमता उसने स्वयं ही अपने चारों तरफ के संसार के साथ जुड़ाव से, नैसर्गिक रूप से अर्जित की है।

बच्चे द्वारा अर्जित किए गए इन सभी क्षेत्रों में सबसे अधिक विश्लेषित और जाना-माना क्षेत्र 'भाषा' है। भाषा बच्चे के ज्ञान का केन्द्र बिन्दु होती है। यद्यपि यह विवादित है कि क्या अपने दृष्टिकोण से ही बच्चा अपने संसार को बनाता है, पर यह स्पष्ट रूप से देखा गया है कि उसकी भाषा ही उसके विकास को प्रभावित करती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाषा जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है और हमारी पहचान भी। यह हमें परिभाषित करती है एवं हमारे विकास को आकार प्रदान करती है।

बच्चा भाषा सम्बन्धी सभी स्थितियों को सम्भाल सकता है

विद्यालय में आने वाले बच्चे की क्षमता को समझने की दृष्टि से हमें इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि वह अपने चारों ओर के समुदाय के साथ व्यवहार करने में समर्थ है एवं घर पर सभी कार्यों में पूरे मनोयोग से हिस्सा लेता है। वह अपने समाज, संस्कृति और भाषा सम्बन्धी वातावरण के सभी विषम घटकों के साथ न केवल सम्प्रेषण करने में समर्थ है अपितु उनके साथ सक्रिय रूप से जुड़ा है। वह भाषा को किसी भी सन्दर्भ में अथवा किसी भी सन्दर्भ के लिए प्रयोग कर सकता है जिसका कि वह हिस्सा रहा हो अथवा जिसका उसे अनुभव है। वह अपनी भाषा को उचित प्रकार से समायोजित कर सकता है। जिस व्यक्ति से वह बात कर रहा है उसकी स्थिति और अवसर को ध्यान में रखते हुए इसमें उचित समायोजन कर सकता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि विचार-विनिमय के तरीक़े को चुनने में वह कोई भूल अथवा त्रुटि नहीं कर सकता अथवा कोई भूल नहीं करेगा। उससे भूल इसलिए भी हो सकती है क्योंकि वह परिस्थिति को उचित ढंग से पढ़ नहीं रहा है। किसी विशेष परिस्थिति में कैसे व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में उसमें समझ की कमी नहीं है। वह जानता है कि यदि कोई उससे उम्र में बड़ा है अथवा कोई उससे विनती करता है तो उसे शिष्ट होना पड़ेगा और यदि वह शिष्टता नहीं दिखाता है तो उसके पास इसका कोई कारण होगा। वह विभिन्न सामाजिक स्तर का अनुभव करने, उन्हें समझने में सक्षम है और वह जानता है कि परिस्थिति को अपने पक्ष में कैसे किया जाए। वह अपनी भाषा का धाराप्रवाह उपयोग करके अपनी इच्छाओं को व्यक्त करता है, अपने अनुभवों

के विषय में बात करता है और अपनी भावनाओं का आदान-प्रदान करता है। निश्चित रूप से यह सभी कठिन क्रियाएँ है। यदि विस्तार से इनका विश्लेषण करके देखा जाए कि उनकी क्या अपेक्षाएँ हैं, तो सूची बहुत चकित करने वाली होगी।

अवधारणाएँ और बच्चा

बच्चा भाषा का प्रयोग नए विचारों को अर्जित करने और अपनी अवधारणाएँ बनाने के लिए करता है। विभिन्न विषयों से सम्बन्धित सभी प्रकार के विचार एक चार वर्ष के बच्चे द्वारा अर्जित किए जाते हैं यद्यपि वह इन्हें स्वयं के अनुभव के आधार पर अर्जित करता है। उदाहरण के लिए सभी प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक रिश्तों की अवधारणाएँ और इनके बीच की भिन्नता और छोटे-बड़े का तर्क, कृषि और पौधों के जीवन से सम्बन्धित अवधारणाएँ, त्यौहारों, गृहकार्य इत्यादि से सम्बन्धित विचार अथवा अवधारणाएँ आदि। बच्चा सभी प्रकार की सूचनाओं को एक स्पंज के भाँति आत्मसात कर लेता है। हम मान सकते हैं कि इनमें से कुछ सूचनाएँ उसके लिए अनावश्यक होंगी और कुछ का जानना उसके लिए महत्त्वपूर्ण होगा। परन्तु वह इन सभी को सीखता है। एक बार जब वह इन सबके विषय में वार्तालाप करने में सक्षम हो जाता है तो उसे कोई नहीं रोक सकता। चाहे वह लोगों, बर्तनों, पेड़-पौधों, जन्तुओं, ऋतुओं के नाम हों अथवा कौन आ रहा है और कब कौन जा रहा है और कहाँ जा रहा है, एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से क्या सम्बन्ध है, बाजार में क्या बातचीत हुई आदि आदि। बच्चा इस सबके बारे में जानता है। इसके अतिरिक्त बच्चा तर्क निर्माण करने, अपने अधिकारों की रक्षा करने, परिस्थितियों का विश्लेषण करने और साथ ही सपनों और कल्पनाओं के संसार का निर्माण करने में भाषा का उपयोग करता है। जिन शब्दों को वह जानता है उनका उपयोग करके अपने संसार का वर्णन करता है और इसी प्रकार अपने सपनों का भी निर्माण करता है।

बच्चा और वाक्य रचना

बच्चे की क्षमता को समझने के लिए मात्र उस अवधारणा (जिसे वह जानता है) की उसकी समझ को, उसकी लयबद्धता, वार्तालाप की व्यवस्थित क्रमिक प्रक्रिया आदि की दृष्टि से देखना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है अपितु भाषा की वाक्य रचना से सम्बन्धित उसके अचेतन ज्ञान को समझना भी आवश्यक है। बच्चा जिस परिस्थिति का वर्णन कर रहा होता है उसके अनुरूप वह क्रिया के सभी रूपों का उपयोग सही ढंग से करता है। यदि भाषा में संज्ञा और सर्वनाम के कई रूप हैं तो वह इनके सही रूप का ही उपयोग करता है। अपनी स्वयं की भाषा में वह काल, एकवचन अथवा बहुवचन, लिंग और संधियों के सही रूप का प्रयोग करने में कोई भूल नहीं करता। यदि हम बच्चों द्वारा प्रयोग किए गए हिन्दी एवं अँग्रेज़ी के कुछ (लगभग दस) अलग-अलग वाक्यों को लें और उनका विश्लेषण करें तो पाएँगे कि अलग-अलग सन्दर्भों से चयनित किए गए इन वाक्यों को बनाने के लिए शब्दों के सही रूपों का ज्ञान, उन्हें व्यवस्थित करने की उच्च क्षमता तथा इन शब्दों को कैसे युग्मित किया जाए इन बातों का अचेतन ज्ञान होना आवश्यक है। तीन या चार वर्ष के एक बच्चे द्वारा प्रयोग किए गए वाक्य उसके द्वारा इनमें सूक्ष्म अन्तर कर पाने की क्षमता की ओर संकेत करते हैं।

हमें इस पर भी विचार करने की आवश्यकता है कि बच्चा लगातार नए शब्दों के सम्पर्क में आता है। एक बार जब वह किसी शब्द को वृहद अर्थ में जान लेता है तो वह इस पर और गहरी समझ विकसित करने हेतु अलग-अलग सन्दर्भों में इसका प्रयोग करता है। एक शब्द के सभी रूपों का नियमानुसार निर्माण और प्रयोग करने लगता है। इनमें से कई नियमों को विभिन्न भाषा विद्वानों द्वारा मान्यता दी गई है तथा कुछ व्याकरण की पुस्तकों में शामिल किए गए हैं लेकिन इनमें से कई शब्द अभी भी खोजे और चिहिन्त नहीं किए जा सके हैं। भाषाविद् सदैव भाषाओं के लिए बेहतर व्याकरण और नियमों का निर्माण करने का प्रयास करते रहते हैं जो कि अलग-अलग सन्दर्भों में समावेश अथवा उपयोग के योग्य हैं। इन नियमों के निर्मित होने और अभिव्यक्त होने से पूर्व से उस भाषा को स्थानीय रूप से उपयोग करने वाले अपनी आपसी समझ से इनका प्रयोग करते रहे हैं। निःसन्देह, इन सभी नियमों में नए परिवर्तनों सहित समझ बच्चे के लिए उपलब्ध होती है।

यह सब कैसे अर्जित किया गया है?

इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मानवीय अन्तःक्रिया के अभाव में भाषा क्षमता का विकास नहीं होता है। ऐसे भी पर्याप्त प्रमाण हैं कि भिन्न-भिन्न पृष्ठभूमि और समुदायों से आने वाले बच्चे विभिन्न प्रकार की क्षमताएँ अर्जित कर लेते हैं और उनका अनुभव उनके ज्ञान को प्रभावित करता है। तथापि ज्ञानार्जन के कुछ सामान्य लक्षण हैं और किंचित सामान्य अवस्थाएँ हैं। किन्तु ज्ञानार्जन एक समान नहीं होता। हम अपने स्वयं के अनुभवों से जानते हैं कि वयस्क लोग बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में सहायता करने का प्रयास करते हैं। वे सब अपने सर्वश्रेष्ठ तरीक़ों से करते हैं। कुछ मामलों में या तो बच्चों की तरह बोलकर उन्हें सहजता का अहसास कराते हैं या फिर बच्चे को जो कुछ बोलना है उसे कई भागों में बाँटकर आसान बनाते हुए बच्चों से उनकी नक़ल करने और उसे बार-बार दोहराने को कहा जाता है। बच्चे से हुई ग़लतियों में सुधार करते हुए उससे सही वाक्य को बार-बार दोहराने के लिए कहा जाता है। परन्तु जो स्पष्ट है, वह यह है कि इन सभी क्रियाओं में बच्चे के प्रति एक भावनात्मक लगाव रहता है और वह स्वयं को महत्त्वपूर्ण अनुभव करे इस बात की स्वीकारोक्ति होती है। यह मान्यता (स्वीकारोक्ति) और साथ ही प्रोत्साहन बच्चे के ज्ञानर्जन में बहुत महत्त्वपूर्ण है।

तथापि, यह स्पष्ट है कि इस प्रकार प्रोत्साहन देने, उद्यत करने और मार्गदर्शन से कुछ अधिक नहीं सीखा जा सकता। इस प्रक्रिया में बच्चे का जितना विकास हो सकता है वह उससे कहीं अधिक ज्ञान और क्षमता रखता है। बच्चों की कितनी ग़लतियों को सुधारकर हम उनकी सहायता कर सकते हैं, कितना और क्या सब कुछ सीखने में हम बच्चों का मार्गदर्शन कर सकते हैं? हम भी यह जानते हैं कि हम जो सिखाना नहीं चाहते बच्चा उसी को श्रेष्ठता से सीखता है। बच्चा ऐसी अनेक बातें सीख लेता है जिन्हें हम चैतन्य रूप से जानते तक नहीं और उसे यह नहीं बता सकते कि यह कैसे सम्भव होगी और उस कार्य को करने में वह कैसे सक्षम हो सकता है। तो हमारे द्वारा दी गई आज्ञा और हमारा मागदर्शन बच्चों के कार्यों में उनकी कितनी सहायता करता है? वास्तव में मानव समाज में व्याप्त नैसर्गिक अन्तःक्रिया एवं तत्परता है जो एक बच्चे को यह सब कुछ सीखना सम्भव बनाती है। यह एक तथ्य है कि बच्चे के लिए मानव पर्यावरण

उपलब्ध है और वह अनेक सहानुभूतिपूर्ण एवं शुभाकांक्षी व्यक्तियों के साथ विचारों का आदान-प्रदान कर रहा है, यह परिवेश बच्चे में इस प्रकार की क्षमता निर्माण के लिए अनिवार्य है।

क्या बच्चे नक़ल करके सीखते हैं?

जब हम यह मान लेते हैं कि बच्चा मानव संसार के साथ पारस्परिक सम्पर्क से सीखता है तो वह भी हम समझ सकते हैं कि पारस्परिक सम्बन्धों की प्रकृति उसके ज्ञान को प्रभावित कर सकती है। एक प्रचलित विश्वास है कि ''बच्चा नक़ल से सीखता है।'' यह महत्त्वपूर्ण है कि हम इस पर एक दृष्टि डालें क्योंकि हमारे द्वारा बच्चों के लिए निर्मित अनेक अनुभव उन पर प्रभाव डालते हैं। यदि मनुष्य नक़ल करके अथवा अनुकरण से सीखता है तो तर्कों एवं सीखने की प्रक्रिया को इस प्रकार देखा जा सकता है-आप जो कर रहे हैं बच्चे को उसका अवलोकन करने दो, ग़लतियाँ करे तो उसमें सुधार कर दो। बच्चा बार-बार भूल करे तो उससे लगातार उसी कार्य को दोहराने के लिए कहा जा सकता है। यद्यपि यह स्पष्ट रूप से ज्ञात है कि विद्यालय जाने से पूर्व ही बच्चे द्वारा जो ज्ञान अर्जित कर लिया गया है उसे देखते हुए यह एक उचित प्रक्रिया नहीं है। बच्चा सभी वार्तालापों में भाग नहीं ले सकता है और उन सभी वाक्यों की रचना नहीं कर सकता है जो उसने किसी व्यक्ति को बोलते हुए सुने हैं या उस पर आधारित हैं। बच्चा ऐसे बहुत से वाक्य बोलता है जो इससे पहले उसने कभी नहीं बोले होते हैं। वे सन्दर्भ जिसमें वे सभी वाक्य बनाए गए हैं वे कभी निर्मित नहीं हो सकते थे। हम यह नहीं कह सकते हैं कि सीखने की यह प्रक्रिया वर्तमान अवस्था में मनुष्य द्वारा सीखने के बारे में हमारी समझ से पूरी तरह असम्बद्ध है। फिर भी इतना स्पष्ट है कि इस प्रकार की प्रक्रियाओं से बच्चे के पूर्वज्ञान के बहुत ही न्यून भाग को ही प्रभावित किया जा सकता है।

सीखने वाले बच्चे की विशिष्टताएँ

हम कह सकते हैं कि विश्व खोज की मानव अभिलाषा ही ज्ञानार्जन की प्रक्रिया का प्रमुख पक्ष है। इस खोज में बच्चा संसार का अधिक-से-अधिक अनुभव प्राप्त करना चाहता है और इसके साथ अपने सम्बन्धों को और विस्तृत (प्रगाढ़) करना चाहता है। उसके भीतर नवीन वस्तुओं का अनुभव करने, नए कार्य करने और चुनौतियों को समझने योग्य बनाने की क्षमता होती है।

दूसरा प्रमुख पक्ष है कार्यों को करने का दृढ़ निश्चय (जिद) और आसानी से हार नहीं मानना। एक बच्चा चलना सीखते समय खड़ा होने का प्रयास करता है और गिर जाता है परन्तु चलना नहीं छोड़ता। जब बच्चा वार्तालाप करना सीखता है तो पाता है कि उसे कोई नहीं समझ रहा है, यद्यपि यह स्पष्ट नहीं कि वह स्वयं भी कितना समझता है, फिर भी वह लगातार स्वयं को सीखने चुनौती देता रहता है। इसलिए यह एक विशेषता है कि जिन चीज़ों को वे सीखना चाहते हैं उन्हें सीखने के लिए लगातार संघर्ष करना चाहते हैं।

तीसरी प्रमुख विशेषता है कि कार्यों को स्वयं करने एवं स्वयं ही सब कुछ अभिव्यक्त करने की इच्छा अथवा चाह। किसी कार्य का परिणाम बच्चे के लिए उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना महत्त्वपूर्ण यह है कि इस प्रक्रिया में उसकी भूमिका क्या थी अथवा क्या होगी।

बच्चे की असीमित जिज्ञासा चौथी विशेषता है। जिज्ञासा जो हो रहा है अथवा किसके लिए या फिर क्यों हो रहा है इत्यादि के बारे में। बचपन से ही मानव अपने चारों ओर की स्थिति के विषय में सब कुछ जानने की इच्छा रखता है। बच्चा संसार के साथ अधिक कुशलता से व्यवहार करने की क्षमता को अर्जित करना चाहता है, इसलिए वह अत्यधिक जिज्ञासु होता है। जिज्ञासा सम्भवतः एक ऐसा निहित गुण अथवा लक्षण है जिसका परिणाम खोजने की इच्छा और इसी के साथ कार्यों को स्वयं करने की इच्छा के रूप में मिलता है। यही वह अभिरुचि अथवा विशेषता है जो बच्चे को नए अनुभव कराती है एवं नवीन परिस्थितियों और चुनौतियों का सामना करने एवं साहस करने के लिए उकसाती है। वह उन वस्तुओं को खोजने से भी नहीं डरता जो उसके माता-पिता नहीं खोजना चाहते। वह अपनी जिज्ञासा के अनुरूप दृढ़निश्चय और स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करता है।

इन विशेषताओं के निहित प्रभाव

ये चार विशिष्टताएँ वयस्कों के साथ उस तरह के पारस्परिक सम्बन्धों की ओर संकेत करती हैं जिनसे बच्चों को सीखने में सहायता मिलती है। इनमें बच्चे को खोजने, स्वयं कार्य करने, अपनी इच्छा और निश्चय को पहचानने और साथ ही अपनी योग्यता का सम्मान करने की जागरूकता सम्मिलित है। इनमें यह तत्व भी निहित है कि वयस्कों को समझने की आवश्यकता है कि बच्चा अपने अनुभव को आत्मसात करके और अधिक क्रिया करते हुए सीखेगा। वयस्क, बच्चे को ऐसा करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं और यह सुनिश्चित कर सकते है कि बच्चा जो चुनौतियाँ और जोखिम ले रहा है वे ख़तरनाक अथवा नुकसानदायक तो नहीं हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण पहलू है परन्तु ऐसा करना कठिन होगा विशेषरूप से जब शारीरिक ख़तरे की बात हो। इस पर पृथक से चर्चा करने की आवश्यकता है। अब हम इस बिन्दु पर ध्यान केन्द्रित करेंगे कि कक्षा में हम इस ज्ञान का उपयोग कैसे करते हैं।

कक्षा-कक्ष एक ऐसा स्थान है जो घर से पूर्णतया अलग प्रकार का होता है और बच्चा जिस वातावरण में रहता है, यहाँ उससे अलग प्रकार का वातावरण होता है। इनके अन्तर को रेखांकित करना आवश्यक है। कक्षा-कक्ष एक ऐसा स्थान है जहाँ बच्चों के एक ऐसे समूह के लिए शिक्षा की व्यवस्था की जाती है, जो आवश्यक नहीं है कि एक ही प्रकार की पृष्ठभूमि अथवा अनुभव का आधार रखता हो। ज्ञानार्जन से कुछ अपेक्षाएँ होती हैं, जहाँ विद्यार्थी को पहुँचना होता है। अध्यापक प्रायः ऐसी पृष्ठभूमि से आते हैं जो बच्चों की भाषा और संस्कृति को समझ अथवा पहचान नहीं पाते हैं। बच्चे और उसके अध्यापक का सम्बन्ध घर में वयस्कों के साथ बच्चे के सम्बन्ध से पूर्णतया भिन्न प्रकार का होता है और उनकी भावनाएँ भी भिन्न प्रकृति की होती हैं। विद्यालय में उपलब्ध समय और अवसर बहुत सीमित होते हैं। प्रत्येक बच्चे को अपनी इच्छानुसार यह तय करने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि वह क्या करना चाहता है और उस समय विशेष पर वह क्या कुछ सीखने का इच्छुक है। इन विभिन्नताओं को समझना और महसूस करना होगा जिससे कि हम कक्षा-कक्ष के सम्भावित निहितार्थ के बारे में विचार करने योग्य हो सकें और अब तक जो विचार विकसित हुए हैं उनके बारे में सोच सकें।

बच्चे में चार विशेष गुण होते हैं - (1) असीमित जिज्ञासा (2) स्वतंत्रता की ललक या इच्छा (3) खोज और प्रयोग करने की आवश्यकता और साथ ही (4) स्वयं कार्य करने की इच्छा। स्कूल में बच्चों को सीखने के अवसर उपलब्ध कराने में ये चार गुण आधारभूत माने जाने चाहिए। इसके आधार पर वे विभिन्न स्थितियों में वे अपने आपको भिन्न तरीक़े से अभिव्यक्त कर पाएँगे।

बच्चे के द्वारा भाषा सीखने के सन्दर्भ में हमें यह मानने की आवश्यकता है कि बच्चे के पास पहले से ही भाषा का उपयोग करने की बहुत क्षमता है। उसके पास एक विशाल शब्दकोष है और अपनी भाषा में पूर्णवाक्य रचना करने की योग्यता है और वार्तालाप करने की क्षमता है। हमें यह भी मानना होगा कि कार्यों को स्वयं करने हेतु बच्चे को अवसर चाहिए अर्थात् स्वयं के विचारों को व्यक्त करना, भाषा का अलग ढंग से प्रयोग करना और दृष्टिकोण के बचाव हेतु तर्क बनाना। अपने अध्यापक की यांत्रिक रूप से नक़ल करना या अन्य दूसरे तरीक़े से नक़ल करना बच्चे की कुछ भी सहायता नहीं करता क्योंकि यह न तो बच्चे को चुनौती देता है और न ही उसे इसमें रुचि हो सकती है। भाषा क्षमता के निर्माण हेतु इस बात को आश्वस्त करने की आवश्यकता है कि बच्चा अनेक प्रकार की स्थितियों का सामना करने में सक्षम हो सके। वह अधिक जटिल तर्कों का निर्माण कर सके, अधिक जटिल विचारों के साथ व्यवहार कर सके और संवाद को लम्बे समय तक चला सके, जिसमें कि अमूर्त विचार भी सम्मिलित हैं। अतः बच्चों को यह सब अर्जित कराने हेतु हमारी कक्षा-कक्ष प्रक्रियाओं को उनके लिए आवश्यक स्थान एवं अवसर उपलब्ध कराने होंगे।

बच्चों की भाषा को स्वीकार करें

हमें यह मानना होगा कि जब बच्चा अपने परिवेश की उन वस्तुओं के बारे में खोजबीन करता है जिन्हें वह जानता है तो वह बहुत अच्छी तरह सीखता है। वाक्यों का निर्माण करने और नई प्रकार की स्थितियों में सहभागिता करने में उसे एक निश्चित मात्रा में आत्मविश्वास की और जिस भाषा का वह प्रयोग कर रहा है उसमें योग्यता की आवश्यकता होती है। यदि कक्षा-कक्ष की भाषा का बच्चे की भाषा से कोई लेना-देना नहीं है और वहाँ की भाषा उन शब्दों पर आधारित नहीं हैं जिन्हें बच्चा जानता और समझता है तो ऐसा कोई तरीक़ा नहीं है कि वह खोजबीन के लिए स्वयं में विश्वास महसूस कर सके और नई चुनौतियों को ले सके। उसे एक विशेष ज्ञानार्जन प्रक्रिया के साथ आत्मविश्वासपूर्ण सहभागी के रूप में एक कैचअप खेल खेलना होता है और वह भी बिना पर्याप्त अवसर और समय के।

कक्षा-कक्ष में सामान्यतः विभिन्न भाषाओं वाले बच्चे होते हैं। इसलिए अध्यापक को एक प्रमुख सिद्धान्त का पालन करते हुए सभी बच्चों के लिए एक सम्पर्क भाषा की पहचान करनी होती है और उसे सीखना भी पड़ता है। कक्षा-कक्ष में संवाद उसी भाषा में करना होता है जिससे कि वह भाषा का उपयोग करने की योग्यता को सशक्त बना सके (तर्क, कल्पना, आत्मविश्वास, सम्प्रेषण, ज्ञान का विस्तार इत्यादि)। सम्प्रेषण की कमी को दूर करने का भार अध्यापक द्वारा ही उठाया जाता है।

बच्चों को उनको अपनी भाषा का उपयोग करने तथा कक्षा में उपस्थित सभी भाषाओं के साथ खेलने की अनुमति दी जानी चाहिए। वे स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए विभिन्न भाषाओं के शब्दों का उपयोग कर सकते हैं और इसके द्वारा संवाद कराने की श्रेष्ठतर योग्यता विकसित कर सकते हैं।

सम्मान और एक सकारात्मक आत्मछवि

एक बच्चे द्वारा आत्मविश्वास महसूस करने के सन्दर्भ में दूसरा आवश्यक बिन्दु है, सकारात्मक आत्मछवि। बच्चे की संस्कृति, भाषा तथा उसकी पहचान का सम्मान किया जाना चाहिए। जब इनका सम्मान होगा केवल तभी वह बच्चा स्वयं खोजना सीख पाएगा और अपनी इच्छा और जिज्ञासा का अभ्यास कर पाएगा। इस बात में विश्वास के अभाव में कि वह जो कहता है अथवा महसूस करता है उसका सम्मान किया जाएगा, सीखने अथवा ज्ञानार्जन के कोई भी महत्त्वपूर्ण लक्षण बच्चे के व्यवहार में परिलक्षित नहीं होंगे।

इसके प्रभाव तथा परिणामों को समझने के लिए और कक्षा-कक्ष में क्या किया जा सकता है, इन सम्भावनाओं पर विचार कीजिए; बोर्ड पर एक वस्तु (अथवा किसी भी प्राणी) का चित्र बनाएँ और फिर बच्चों से पूछिए कि वे इसे क्या नाम देंगे। बच्चों द्वारा सुझाए गए सभी नामों को बोर्ड पर लिखिए। इसके पश्चात् बच्चों से कहें कि वे अपनी स्वयं की भाषा में इस बारे में बताएँ कि इस चित्र के बारे में वे क्या जानते अथवा समझते हैं। यदि वह स्वयं अन्य भाषा अथवा सम्पर्क भाषा धाराप्रवाह रूप से नहीं बोल सकता तो कक्षा में ऐसे बच्चे होंगे जो कि उसके द्वारा कही गई बात को समझा सकते हैं। फिर भी, यह एक स्पष्ट समझ होनी चाहिए कि बच्चा जब तक चाहे अपनी भाषा में ही बोल पाए। ऐसे कई अभ्यास किए जा सकते हैं जिनके अन्तर्गत कारीगरों (कामगारों) अथवा शिल्पियों के बारे में या फिर किसी घटना, कोई गतिविधि अथवा अन्य किसी विषय पर बात करके बोलने का अभ्यास किया जाए। बच्चों को किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में वर्णन करने के लिए कहा जा सकता है जिसे वे पसन्द करते हैं अथवा उनके जीवन में आए एक ऐसे क्षण के बारे में जिसे वे सदा ही याद रखना चाहेंगे। हमें यह स्मरण रखना होगा कि भाषा मात्र शब्दों तथा वाक्य रचना से कहीं अधिक बड़ी है, यह हमारा सम्पूर्ण अस्तित्व है, और इसलिए बच्चे को उसकी अपनी भाषा का प्रयोग करने हेतु प्रोत्साहन अथवा अनुमति देने का अर्थ है उसे स्वयं की अभिव्यक्ति की अनुमति देना और जैसा वह है उसी के अनुसार स्वयं को प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान करना।

हृदय कान्त दीवान अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में फैकल्टी के सदस्य हैं। वे 'एकलव्य' संस्था के संस्थापक समूह के सदस्य हैं। वे विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर के आयोजक सचिव एवं शैक्षिक सलाहकार भी हैं। पिछले 40 वर्षों से वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न तरीक़ों से और उसके विभिन्न पहलुओं पर कार्यरत रहे हैं। शैक्षिक नवाचार के प्रयासों और राज्य के शैक्षिक ढाँचे में बदलावों से वे ख़ासतौर से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

यह *Learning Curve, Issue XIII (Language Learning),* अक्टूबर, 2009 में प्रकाशित लेख Capability of the Child का हिन्दी अनुवाद है।

पुनरीक्षण एवं सम्पादन : राजेश उत्साही